पितृ-देवो भव

(पितृसंस्था और पीढ़ियों का अन्तराल : प्राचीन भारत का चित्र)

देवर्षि कलानाथ शास्त्री
(राष्ट्रपति सम्मानित विद्वान्)
भाषामीमांसा एवं शास्त्र शोधपीठ,
विश्वगुरुदीप आश्रम शोध संस्थान, जयपुर

भारतीय समाज में पति और पत्नी, पिता और पुत्र, गुरु और शिष्य इन संबंधों की मर्यादा धार्मिक और शाश्वत सदाचार के धरातल पर इतनी गहरी स्थापित की गयी है कि वह हमारी संस्कृति का अभिन्न अंग बन गयी है। पति और पत्नी की मर्यादा तथा विवाहप्रथा की पवित्रता के सिद्धान्त का सूत्रपात महर्षि दीर्घतमा और श्वेतकेतु द्वारा किया गया था, ऐसा उल्लेख पुराणों में मिलता है, किन्तु पिता और पुत्र के संबंधों की परम्परा उससे भी पुरानी प्रतीत होती है। वैदिक काल से ही पिता और पुत्र दोनों के पृथक्-पृथक् कर्तव्यों और अधिकारों की मर्यादा को एक सुदृढ़ सामाजिक मूल्य के रूप में मान्यता दे दी गयी थी।

पिता का कर्तव्य पुत्र का भरण-पोषण ही नहीं बल्कि उसकी समुचित शिक्षा-दीक्षा भी उसका दायित्व है। वह उसे गुरुकुल भेजता है और वापस लौट कर उसके गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने तक उसकी देखरेख अपना कर्तव्य समझता हैं। पिता की सम्पत्ति पर पुत्र का उत्तराधिकार सामान्य रूप से उसका जन्मजात अधिकार ही माना जाता रहा है। चूँकि वह अपने पिता की संपत्ति का दाय अर्जित करता है, इसलिए स्वभावत: यह भी उसके कर्तव्य के रूप में विहित किया गया कि वह वार्धक्य में माता-पिता की सेवा करेगा और उनकी अंत्येष्टि तक ही नहीं बल्कि उसके बाद भी श्राद्ध के रूप में उनकी स्मृति का सम्मान करेगा। पितृसत्तात्मक समाज की यह स्वाभाविक मर्यादा चाहे प्रारम्भ में एक सामाजिक करार के रूप में ही कायम हुई हो, किन्तु हजारों वर्षों से यह हमारी संस्कृति में बहुत गहरी पैठी हुई है।

महाभारत में देवव्रत भीष्म की पितृभक्ति का उदाहरण प्रसिद्ध है। अपने पिता शान्तनु की इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए कि उन्हें छोड़ कर चली जाने वाली पत्नी गंगा के एक मात्र पुत्र देवव्रत से यदि उनका वंश आगे न चल पाए तो उनका कम से कम एक पुत्र और हो जाय, देवव्रत ने आजन्म अविवाहित रहने की प्रतिज्ञा कर ली थी। राजा शान्तनु दाशराज की अनिन्द्य सुन्दरी कन्या सत्यवती से विवाह करना चाहते थे, किन्तु दाशराज उनसे यह आश्वासन चाहते थे, कि सत्यवती का पुत्र ही राज्य का उत्तराधिकारी होगा। उनका यह आग्रह उचित भी था क्योंकि उनका कहना यह था कि नीचे के तबकों की सुन्दर कन्याओं के साथ राजा लोग विवाह तो कर लें, किन्तु उनकी संतानों को पूरा अधिकार न दें, तो यह उस तबके के साथ अन्याय है। देवव्रत ने दाशराज की इस आशंका के समाधान के लिए न केवल यह प्रतिज्ञा की कि वे अपना राज्याधिकार छोड़ते हैं, किन्तु यह भी प्रतिज्ञा करली, कि वे आजन्म ब्रह्मचारी रहेंगे, ताकि उनके संतान होने और उनके द्वारा उत्तराधिकार का दावा करने का प्रश्न ही न उठे।

पिता और पुत्र के संबंधों का सबसे उदार–स्वरूप राम और दशरथ के उदाहरण में मिलता है। पिता की आज्ञा के पालन को सर्वोच्च कर्तव्य मानना और उनके लिए स्वयं के हित का और सुख का बलिदान कर देना राम के गुणों में सबसे बड़ा गुण माना जाता है और इस आदर्श ने करोड़ों भारतीयों को इस मर्यादा के पालन की प्रेरणा दी है। जब कैकयी जबरदस्ती दशरथ को राम के वनवास पर सहमत कर लेती है तो इस बात को नितांत अन्यायपूर्ण और मर्यादा के प्रतिकूल मान कर अनेक व्यक्ति राम को सलाह देते हैं , स्वयं दशरथ भी यह चाहते हैं कि वे इसका कुछ विरोध करें और यह भी स्पष्ट है कि राम यदि इसका थोड़ा भी विरोध करते, तो यह निर्णय निरस्त हो जाता, किन्तु उनका उत्तर यही होता है –

न ह्यतो धर्मचरणं किंचिदस्ति महत्तरम्।
यथा पितरि शुश्रूषा तस्य वा वचनक्रिया।।

नास्ति शक्तिः पितुर्वाक्यं तमतिक्रमितुं मम।
अहं हि वचनाद्राज्ञः पतेयमपि पावके ॥

भक्षयेयं विषं तीव्रं पतेयमपि चार्णवे।
नियुक्तो गुरुणा पित्रा हितेन च नृपेण च।।'

पिता की सेवा और उनकी आज्ञा के पालन से बढ़ कर कोई धर्म नहीं है। मुझ में उनके वचन का उल्लंघन करने की शक्ति नहीं है। वे पिता ही नहीं, मेरे हितैषी और इस देश के राजा भी हैं। उनके कहने पर मैं आग में कूद सकता हूँ, समुद्र में गिर सकता हूँ और जहर भी खा सकता हूँ।

इस प्रकार राम ने एक आधारभूत मूल्य के रूप में पिता की आज्ञा के पालन की महत्ता की स्थापना की है। रामायण में ही नीचे तबके के होने के बावजूद अपने माता-पिता की निस्वार्थ सेवा करने वाले श्रवणकुमार का उदाहरण भी इसी की एक कड़ी है। श्रवण तो पितृभक्ति का आदर्श ही बन गया है। अंधे माता-पिता से किसी भी लाभ या अधिकार की आशा न होने पर भी कर्तव्य के रूप में वह उनकी निरंतर सेवा करता था और इसके साथ-साथ विद्या अध्ययन भी करता रहता था।

पुत्र की ओर से पिता के प्रति इस प्रकार निष्कपट और बिना किसी शर्त के श्रद्धा और आज्ञाकारिता का यह विधान भारतीय संस्कृति का एक विशिष्ट सिद्धान्त है। यद्यपि इस आज्ञाकारिता को अवांछनीय रूप से चरम सीमा तक पहुँचाने वाले उदाहरण भी मिलते हैं, जैसे अपने पिता जमदग्नि के कहने पर परशुराम द्वारा अपनी माँ का वध कर देना, चाहे उसका स्वरूप और उद्देश्य कुछ भी रहा हो। पुराणों में सोम शर्मा और देव शर्मा जैसे कुछ पुत्रों के उपाख्यान ऐसे भी मिलते हैं, जिनमें उन्होंने पिता की कुछ घृणित और कुत्सित इच्छाओं तक की तृप्ति के लिए बड़े कष्ट झेले और बड़े बलिदान किये।

वेदकालीन राजा परम प्रतापी ययाति की कथा को पुराणों में ऐसा तोड़-मरोड़ दिया गया कि यौवन के आनंदोपभोग की इच्छा से उसने अपने पुत्रों से अपना बुढ़ापा लेकर उनका यौवन विनिमय के रूप में माँग लिया और जिस पुत्र पुरु ने उसे देकर पिता का वार्धक्य स्वयं ले लिया, उसे ही कनिष्ठ होते हुए भी राज्याधिकार मिला। प्रत्येक समाज में ऐसी चरम स्थितियों के कुछ उदाहरण मिल सकते हैं, किन्तु यह उल्लेखनीय है, कि ऐसे उपाख्यान अव्यावहारिक उपदेश मात्र ही थे।

प्राचीन साहित्य में जिस प्रकार आज्ञाकारी पुत्र को आदर्श माना जाता था, उसी प्रकार पुत्र के प्रति पिता के तीव्र एवं निश्छल प्रेम को भी एक आदर्श के रूप में चित्रित किया गया है। नीतिशास्त्रों में पिता के लिए पुत्र को इतना योग्य बना देना आवश्यक बतलाया गया है, कि वह अपने गुणों द्वारा अपने पिता को भी मात कर दे। 'सर्वत्र जयमन्विच्छेत् पुत्रादिच्छेत् पराभवम् । अपने पुत्र को अपने से भी अधिक योग्य बना कर पिता को गर्व होता था।

जिस प्रकार राम की आज्ञाकारिता आदर्श के रूप में वाल्मीकि ने चित्रित की है उससे भी अधिक उल्लेखनीय है राम के प्रति दशरथ का निश्छल और निस्वार्थ स्नेह। अपनी मजबूरी के कारण दशरथ राम को जंगल भेजने पर सहमत तो हो जाते हैं किन्तु उसके साथ ही उनकी जो दशा होती है, उसका बड़ा ही मार्मिक चित्रण वाल्मीकि ने किया है। अपने वचन को झुठलाने में वे समर्थ नहीं हो पाते, किन्तु वे चाहते हैं कि किसी तरह राम को वन नहीं जाना पड़े। कैकयी को भी वे भला-बुरा कहते हैं और हर क्षण चाहते है कि वह अपनी जिद पर जोर देना जरा ढीला करदें, किन्तु ऐसा नहीं होता। राम के जाते ही उनके गुणों का स्मरण कर वे विह्वल हो जाते है। इस सदमे से अचानक उनकी दृष्टि क्षीण हो जाती है । वे कहते हैं – 'कौशल्ये, न जाने मेरी नजर कमजोर क्यों होती जा रही है, मुझे जरा छूकर देखना, लगता है मेरी दृष्टि राम के साथ ही चली गयी है। अब वह कभी नहीं लौटेगी।

न त्वां पश्यामि कौशल्ये साधु मां पाणिना स्पृश ।
रामं मेऽनुगता दृष्टिरद्यापि न निवर्तते।

राम के चले जाने के बाद अंतिम साँस तक वे केवल उन्हीं की चर्चा करते हैं। सुमंत्र जब उन्हें छोड़ कर वापस लौटता है तो उससे भी वे बार बार राम की बात और उनके हाल चाल कहने का आग्रह करते हैं। वे कहते हैं कि उस योग्य और गुणी पुत्र की चर्चा से ही मुझे राहत मिल सकती है। अन्यथा मेरा प्राणांत निकट है।

'आसितं शयितं भुक्तं सूत रामस्य कीर्तय।
जीविष्याम्यहमेतेन ययातिरिव साधुषु।।'

और वे पुत्र के वियोग में प्राण ही छोड़ देते हैं।

पुत्र वात्सल्य पर इसी प्रकार का आदर्श श्रवणकुमार के पिता के स्नेह में भी मिलता है । दशरथ के बाण से घायल श्रवण जब उनके सामने ले जाया जाता है, तो उनका विलाप बहुत हृदयद्रावक होता है। उनके इस शोक में वाल्मीकि ने करुण रस का चरम परिपाक चित्रित किया है। अंधा बाप बुढ़ापे की लकड़ी छिन जाने से किस प्रकार टूट जाता है, इसका अनूठा उदाहरण वाल्मीकि के ये शब्द हैं–

नाभिवादयसे माद्य न च मामभिभाषसे।

किं च शेषे तु भूमौ त्वं वत्स किं कुपितो ह्यसि?

कस्यऽवाऽपररात्रेऽहं श्रोष्यामि हृदयंगमम्?

अधीयानस्य मधुरं शास्त्रं वान्यद् विशेषतः।

तिष्ठ मा मा गमः पुत्र यमस्य सदनं प्रति।

श्वो मया सह गन्तासि जनन्या च समेधितः।

'बेटा आज क्या बात है? तुम मुझे प्रणाम नहीं कर रहे, बोल नहीं रहे। क्या नाराज हो? अब मैं सवेरे किसके शास्त्र पढ़ने की ध्वनि सुना करूँगा? ठहरो, तुम अभी नहीं जा सकते। कल तुम मेरे साथ और अपनी माँ के साथ ही उस लोक में जा पाओगे।' और वहीं पुत्र की चिता पर अंधे माँ–बाप जल कर प्राण दे देते हैं।

सुयोग्य और स्नेहभाजन पुत्र के प्रति उत्कृष्ट प्रेम का ऐसा ही उदाहरण है महाभारत में अभिमन्यु की चक्रव्यूह में मृत्यु हो जाने पर अर्जुन का शोक और स्वयं पुत्र वियोग में प्राण छोड़ देने की प्रतिज्ञा। द्रोणाचार्य का अपने पुत्र अश्वत्थामा के प्रति प्रेम भी इतना ही उत्कृष्ट था। 'अश्वत्थामा मारा गया' यह झूँठी खबर सुनते ही उन्होंने युद्ध बन्द कर दिया और उनका प्राणान्त हो गया। इस प्रकार पुत्र के प्रति स्नेह भी हमारे प्राचीन साहित्य का एक अनुकरणीय आदर्श है। यही कारण है कि प्राचीन संस्कृति में पीढ़ियों के अन्तराल या जनरेशन गैप की समस्या बहुत कम मिलती है। पीढ़ियों का टकराव तो दूर, हमारे यहाँ तो ऐसी परम्परा वर्षों से चली आ रही है कि पुत्र जब तक 5 वर्ष का हो तब तक उसका लालन करे, 15 वर्ष का होने तक उसे कड़े अनुशासन में रखे किन्तु 16 वर्ष का होने के बाद पिता उसके प्रति मित्र का सा व्यवहार करे।

लालयेत् पंच वर्षाणि दश वर्षाणि ताडयेत्।
प्राप्ते तु षोडशें वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥

जिस समाज में इतना विवेकपूर्ण समझौता पारस्परिक संबंधों को नियंत्रित करता हो, वहाँ जैनरेशन गैप की समस्या का प्रश्न ही कैसे उठ सकता है?